International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 615-617

राष्ट्रीय आन्दोलन में बालगंगाधर तिलक की भूमिका

Dr. Sanjeet
Lecturer in History, GSSS. Baniyani, Rohtak, Haryana, India

सारांश
वस्तुतः बाल गंगाधर तिलक का सार्वजनिक जीवन 1880 में शैक्षणिक क्षेत्र से प्रारम्भ होता है। तिलक का विचार था कि अंग्रेजी शिक्षा उनसे पूर्व दो पीढ़ियों की मानसिक गुलामी के लिए उत्तरदायी है। पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीय ब्रिटिश शासन को एक ईश्वरीय देने समझते थे तथा हिन्दुत्व को हेय दृष्टि से देखते थे। इस समय ईसाई मिशनरियों के हाथों में पूना की शिक्षण संस्थाएं थीं और यद्यपि उनको धर्म परिवर्तन के उद्देश्य में अधिक सपफलता नहीं मिली थी लेकिन जनता में इनके विरूद्ध रोष था। चूंकि भारतीय इतिहास में 1900 से 1906 तक का समय अव्यवस्था लिए हुए था। उस समय एक ओर तो आन्तरिक और बाह्य घटनाओं, परिस्थितियों तथा शक्तियों के परिणामस्वरूप भारतीय जनता में नई राष्ट्रीय चेतना का विकास हो रहा था और दूसरी ओर सरकार अधिकाधिक शोषण, दमन तथा शक्ति–प्रदर्शन का मार्ग अपना रही थी। अतएवः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जो उदारवादियों की विचारधारा, लक्ष्य तथा साधनों में अविश्वास रखता था। यह वर्ग जिसे 'उग्रवादी' कहा जाता है जो राजशक्ति के बन्धनों में बंधा हुआ नहीं था तथा भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए कांग्रेस को जन आन्दोलन करने के लिए बाध्य करना चाहता था। प्रस्तुत शोध पत्र में राष्ट्रीय आन्दोलन में तिलक के योगदान का मूल्यांकन किया गया है।

मूल शब्द : राजनीतिक चेतना, उग्र राष्ट्रवाद, पाश्चात्य शिक्षा, राष्ट्रीय आन्दोलन, पुनर्जागरण, ईसाई मिशनरी।

परिचय
बाल गंगाधर तिलक का राजनैतिक जीवन 1881 में पत्रकारिता से प्रारम्भ होता है। जब न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना हुए एक वर्ष हो रहा था और वह आत्म–निर्भन बन रही थी, तो चिपलूणकर तथा नामजोशी ने सुझाव दिया कि एक मराठी तथा एक अंग्रेजी भाषा में साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किये जाने चाहिए। चिपलूणकर ने नामजोशी का प्रेस, जो कि गिरवी पड़ा था तथा जिससे नामजोशी दक्खन स्टार नाम से अपना पत्र प्रकाशित करता था, आसान किस्तों पर खरीद लिया। यह तय किया गया कि मराठी साप्ताहिक पत्रा का नाम 'केसरी' रखा जाय तथा इसका प्रकाशन 2 जनवरी 1881 से प्रारम्भ किया जाय। अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र का नाम 'मराठा' रखा जाय तथा इसका प्रकाशन 2 जनवरी, 1881 से प्रारम्भ किया जाये।[1]

अपने प्रथम वर्ष में 'केसरी' तथा 'मराठा' पत्रों ने देशी रियासतों की राजनीतिक गतिविधियों की और ध्यान दिया तथा विशेषतः बड़ौदा तथा कोल्हापुर की देशी रियासतों में संवैधानिक शासन लागू करने का प्रचार किया। इस सम्बन्ध में कोल्हापुर के दीवान माधवराव बर्वे के विरूद्ध कुछ पत्रों को प्रकाशित किया गया जिनका आशय था कि बर्वे का यह कथन है कि कोल्हापुर के दत्तक नवयुवक दरबार शिवाजीराम विक्षिप्तावस्था में है और वह उन्हें अपदस्थ करने का षड्यन्त्र कर रहे हैं। बर्वे ने तिलक तथा आगरकर दोनों के विरूद्ध मानहानी का दावा किया। मुकद्दमें के दौरान यह सिद्ध हो चुका था कि विवादग्रस्त पत्र एक वकील नाना क्रिड़े ने राजमाता की सहमति से जाली बनाये थे। अतः तिलक तथा आगरकर ने माफी माँगी लेकिन बर्वे मुकद्दमा वापिस लेने के लिए तैयार नहीं थे। तिलक तथा उनका सहयोगी आगरकर तथा उनकी संस्थाएँ जनता में इस घटना से काफी लोकप्रिय हो गयी थी। इससे उन्हें उग्रराष्ट्रवादी होने का गौरव प्राप्त हुआ।

तिलक एवं कांग्रेस.
तिलक ने 1889 में कांग्रेस में प्रवेश किया था और तब से उनका लक्ष्य कांग्रेस को अधिक से अधिक जन–सर्मथन पर आधारित करना था। वे कांग्रेस तथा जनता को एक दूसरे के समीप लाना चाहते थे। लेकिन कांग्रेस में अभी उनकी विचारधारा बल नहीं पकड़ पाई थी। इसके लिए उन्होंने महाराष्ट्र में कई जन–सम्पर्क के कार्य किये। अगस्त, 1893 को बम्बई में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए थे जिनमें तिलक ने हिन्दुओं का पक्ष लिया था तथा हिन्दू–मुस्लिम तनाव के लिए ब्रिटिश नीति को उत्तरदायी ठहराया था। इससे पूर्व हिन्दू और मुसलमानों के बीच मधुर सम्बन्ध थे और हिन्दू मोहर्रम में उत्साह से भाग लेते थे, लेकिन इन साम्प्रदायिक दंगों से मधुरता का यह स्त्रोत सूख गया। इस समय तिलक के मस्तिष्क में गणपति उत्सव का विचार कौंध। यह धार्मिक उस्सव जो कि व्यक्तिगत रूप से मनाया जाता था, तिलक ने उसे सार्वजनिक स्वरूप प्रदान किया। तिलक का लक्ष्य इस उत्सव के माध्यम से एक और हिन्दू जाति को संगठित करना था तथा दूसरी और उनमें राष्ट्रीयता की भावना भरना था। इस प्रकार तिलक ने धर्मिक देव को राजनीति लक्ष्य के लिए प्रयुक्त किया। गणपति उत्सव के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इसके लिए तिलक की आलोचना की गई है कि उन्होंने साम्प्रदायिक दंगों के समय से उसे प्रारम्भ किया जिसके लक्ष्य मुसलमानों तथा यूरोपियनों के विरूद्ध घृणा का प्रचार करना है। लेकिन दो वर्ष के अल्पकाल में ही यह एक राष्ट्रीय उत्सव हो गया तथा इससे तिलक का प्रभाव क्षेत्र कापफी विस्तृत हो गया। इस उत्सव की आलोचना भले ही की जाय लेकिन इसके माध्यम से हिन्दू जाति को संगठित किया जा सका तथा अखाड़ों, लाठी क्लब इत्यादि के माध्यम से उन्हें सशक्त बनने का अवसर मिला था उत्सव के समय खेले जाने वाले धार्मिक नाटकों तथा गीतों से उन्हें

[1] शिवकुमार गुप्ता, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 47.

राजनीतिक सन्देश प्राप्त हुए।[2]

तिलक की लोकप्रियता दिनों–दिन बढ़ती जा रही थी। उन्होंने जून 1895 में बम्बई व्यवस्थापिका परिषद् के निर्वाचन में विजय प्राप्त की तथा जुलाई 1895 में उन्होंने पूना सार्वजनिक सभा पर रानाडे तथा उनके समर्थकों को हराकर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर लिया। इस नये नेतृत्व के कारण मुस्लिम सदस्यों ने सभा से त्यागपत्र दे दिये तथा अगस्त, 1895 में गोपालकृष्ण गोखले ने भी सचिव पद से त्याग दे दिया।[3]

तिलक ने 15 अप्रैल, 1896 को शिवाजी की जन्म तिथि पर रायगढ़ से शिवाजी उत्सव का शुभारम्भ किया। तिलक के मत से शिवाजी साहस, आत्म–सम्मान, वीरता तथा उदारता के प्रतीक थे। जिन्होंने आधुनिक भारत के इतिहास में महाराष्ट्र तथा भारत का नाम अमर कर दिया। वे चाहते थे कि भारतीय शिवाजी के इन गुणों से प्ररेणा ग्रहण करें। वे शिवाजी के माध्यम से जनता में अनन्य राष्ट्रप्रेम तथा स्वतंत्रता की भावना भर देना चाहते थे। इस उत्सव का एक लक्ष्य यह भी था कि शिवाजी के नाम पर महाराष्ट्र में हिन्दुओं के सभी वर्गों में एकता की भावना स्थापित करना। इस प्रकार तिलक ने गणपति तथा शिवाजी उत्सवों को माध्यम से जनता के निम्न तथा मध्यम वर्गों में राष्ट्रीय आत्मसम्मान की भावना को विकसित किया तथा उन्हें एकता के सूत्र में बाँध। तद्यपि तिलक की धर्मिक रूढ़िवादिता एवं सामाजिक सुधारों का विरोध करने तथा साम्प्रदायिकता को उकसाने के लिए आलोचना की गई लेकिन उन्होंने अपनी निस्वार्थ सेवा, त्याग एवं अथक परिश्रम से जनता में सोचे हुए राष्ट्रवाद को एक ज्वालामुखी का रूप देने में सफल हुए। शिवाजी उत्सव मुसलमानों के विरूद्ध नहीं था। वे बदली हुई परिस्थितियों में शिवाजी को एक राष्ट्रीय नेता के रूप में रखना चाहते थे। विदेशी शासन की दासता में केवल हिन्दू ही नहीं मुसलमान भी थे और इसलिए ब्रिटिश शासन हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों के लिए विदेशी था और दोनों के लिए शोषण पर आधारित था। अतः वे स्वतंत्रता के सामान्य लक्ष्य के लिए मुसलमानों से भी राष्ट्रीय सहयोग की अपेक्षा करते थे।

कांग्रेस का ग्यारहवां अधिवेशन 1895 में पूना में हुआ। उस समय तिलक ने कांग्रेस के पंडाल में 'सामाजिक सम्मेलन' करने का विरोध किया। इस पर इन्हें स्वागत समिति से त्यागपत्रा देना पड़ा। उन्होंने कहा कि यह सामाजिक सम्मेलन पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित है तथा उसके द्वारा सुझाव हिन्दू समाज की एकता के लिए घातक है। तिलक ने चेतावनी दी कि कांग्रेस के विरोध में एक पृथक् जन–कांग्रेस की स्थापना की जायेगी। इस समय पूना कांग्रेस में फूट को, निर्वाचित–अध्यक्ष सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की मध्यस्था से बचाया जा सका। रानाडे ने यह विचार व्यक्त किया कि सामाजिक सम्मेलन, कांग्रेस–कार्यक्रम का न तो अंग है और न ही हो सकता। अब तक इस सम्मेलन की बैठकें कांग्रेस अधिवेशन की समाप्ति पर उसी पंडाल में केवल मात्र सुविधा की दृष्टि से की जाती थीं।[4]

1896–97 में पूना पर प्लेग का भयंकर आक्रमण हुआ। सरकार की सहायता ने केवल अपर्याप्त थी बल्कि वह जनता के लिए अत्यधिक कष्टप्रद हो गई थी। सरकार ने रैण्ड को प्लेग कमिश्नर नियुक्त किया था तथा महामारी रोग अधिनियम के अन्तर्गत उसे विस्तृत शक्तियाँ प्रदान की थीं। उसने इस शक्तियों के अन्तर्गत प्रथक्कता के नियम लागू करने में आतंक का साम्राज्य स्थापित कर दिया। 15 जून, 1897 को 'केसरी' के एक लेख में उस भाषण को प्रकाशित करते हुए लिखा था कि 'यदि हमारे घर में चोर घुस आयें और हमारे में उन्हें बाहर भागने की पर्याप्त शक्ति न हो, तो हमें उन्हें बन्द कर जिन्दा जला देने में नहीं हिचकना चाहिए। 22 जून, 1897 को दामोदर चापेकर ने रैण्ड तथा उनके सहयोगी लफ्रिटनेन्ट अयरस्ट की हस्या कर दी। तिलक के द्वारा लिखित उपरोक्त लेख को इन हत्याओं के लिए उत्तरदायी ठहराकर उनको 28 जुलाई, 1897 को गिरफ्तार कर उनके विरूद्ध राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया।[5] तिलक को सितम्बर, 1898 में जेल से छोड़ दिया गया था। उन्होंने अपनी बिमारी के पश्चात् जुलाई, 1899 में केशरी का सम्पादन सम्भाला। उन्होंने 4 जुलाई के पत्रा में उदारवादियों के था सहयोग का आश्वासन दिया जो कि सार्वजनिक सभा पर तिलक द्वारा नियन्त्रण कर लेने तथा सामाजिक सम्मेलन के विवाद से बिल्कुल पृथक हो गये थे। इन दिनों तिलक के विरूद्ध 'ताई महाराज' का मुकदमा चलने का कारण वे महाराष्ट्र की राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भाग नहीं ले सके।[6]

लाल, बाल तथा पाल की विचारधारा

1905 के अधिवेशन के पश्चात् उग्रवादियों को यह स्पष्ट हो गया था कि उदारवादियों के द्वारा बंगाल में चल रहे आन्दोलन के प्रति सहानुभूति प्रगट करने पर भी कांग्रेस के कार्यक्रम में तेजी नहीं आ सकती जब तक कि उस पर उदारवादियों का आधिपत्य है। अतः उग्रवादियों ने लाल, बाल तथा पाल के नेतृत्व में 'एक नया दल' बनाया तथा उसे 'राष्ट्रवादी दल' कह कर पुकारने लगे तथा उदारवादियों को 'पुराना दल' कहा जाने लगा। लाल, बाल तथा पाल के द्वारा एक वर्ष तक गहन प्रचार कार्य करने से उग्रवादियों की संख्या में काफी वृद्धि हो गई थी तथा कांग्रेस में उनका प्रभाव बढ़ गया था। अतः 1906 के कलकत्ता अधिवेशन के अध्यक्ष पद के लिए तिलक का नाम प्रस्तावित किया गया। लेकिन सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा फिरोजशाह मेहता के प्रयासों से दादा भाई नौरोजी इंग्लैण्ड से आकर कांग्रेस की अध्यक्षता करने को सहमत हो गये। उदारवादी तिलक को अध्यक्ष नहीं बनने देना चाहते थे और उनको विश्वास था कि तिलक 'भारत के वृद्ध पितामह' के विरूद्ध अध्यक्ष पद के लिए खड़े नहीं होंगे।[7] उग्रवादियों ने अपनी योजना एक वर्ष के लिए स्थगित कर दी लेकिन उनके प्रभाव से कांग्रेस ने 'स्वराज्य', स्वदेशी, बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी महत्त्पूर्ण प्रस्ताव पारित किये। दादा भाई नौरोजी के व्यक्तित्व के कारण उनके अध्यक्षीय भाषण में 'स्वराज्य' के नव–सन्देश के कारण कांग्रेस अधिवेशन तो शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गया लेकिन उसकी विषय समिति की बैठक में खूब गरमा–गरमी तथा लगभग विद्रोहात्मक स्थितियाँ आईं तथा उदारवादी नेताओं को कुछ अपमान भी सहना पड़ा। इस प्रकार कलकत्ता कांग्रेस उदारवादियों तथा उग्रवादियों दोनों को ही एक चुनौती था। वे कांग्रेस में अपना प्रभाव बढ़ा कर, उदारवादियों को अपदस्थ कर, कांग्रेस पर अपना नियन्त्रण स्थापित करेंगे।[8]

तिलक ने अध्यक्ष के निर्वाचन के तरीके का विरोध किया था क्योंकि उन्हें विश्वास था कि उदारवादी कलकत्ता कांग्रेस में पारित प्रस्तावों में उनके प्रतिकूल संशोधन कर 'स्वराज्य', स्वदेशी तथा बहिष्कार के मार्ग में पीछे हटना चाहते हैं। उनकी यह आशंका निर्मूल नहीं थी। स्वदेशी सम्बन्धी प्रस्ताव में 'कुल त्याग पर ही' शब्दों के स्थान पर 'जहाँ सम्भव हो वरीयता' दी जायेगी रखे गये। बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्ताव में 'बहिष्कार आन्दोलन' शब्द हटा दिये गये थे तथा राष्ट्रीय

[2] विपिनचन्द्र, भारत में राष्ट्रवाद एवं उपनिवेशवाद, पृ0 34.
[3] एस. वॉलपर्ट , तिलक एण्ड गोखले, पृ0 98.
[4] एस. वॉलपर्ट , तिलक एण्ड गोखले, पृ0 102.
[5] ए.त्रिपाठी, दॉ एक्सपिरीमिस्ट चैलेंज, पृ0 178.
[6] एस. वॉलपर्ट , तिलक एण्ड गोखले, पृ0 102.
[7] एस. वॉलपर्ट , तिलक एण्ड गोखले, पृ0 102.
[8] एस. वॉलपर्ट , तिलक एण्ड गोखले, पृ0 103.

शिक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव में 'राष्ट्रीय नियन्त्रण में तथा राष्ट्रीय पद्धति पर शिक्षा' शब्दों को हटा दिया गया था।[9]

लेकिन उदारवादी नेता अपनी स्थिति से बिल्कुल हटना नहीं चाहते थे और उन्होंने अगले दिन उदारवादियों का अलग सम्मेलन किया तथा 1908 में संशोधन कर कांग्रेस के बाहर निकाल दिया। तिलक को 'देशद्रोही' की संज्ञा दी गई लेकिन उन्होंने संयुक्त कांग्रेस के लिए कई प्रयास किये। फिरोजशाह मेहता संयुक्त कांग्रेस के प्रबल विरोधी सिद्ध हुए और अपने मृत्युपर्यन्त उन्होंने उग्रवादियों को पुनः कांग्रेस में सम्मिलित नहीं होने दिया। यह भी विडम्बना ही है कि तिलक का लक्ष्य भी उदारवादियों की तरह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत 'स्वराज्य' प्राप्त करना था लेकिन इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधनों सम्बन्धी ही अन्तर था। उदारवादी साधनों में परिवर्तन के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। अतः 1908 में संविधान में संशोधन कर कांग्रेस को पुनः उसी स्थिति से प्रारम्भ किया गया जो 1885 में थी। इस प्रकार कांग्रेस ने वस्तुतः अपनी 'सुरक्षा कवच' की भूमिका ही निभाई।[10]

इधर उदारवादियों ने तिलक को 'देशद्रोही' कहा, उधर ब्रिटिश सरकार ने 'केशरी' में प्रकाशित कुछ लेखों को मिसेज तथा मिस केनेडी की हत्या के लिए उत्तरदायी ठहरा कर उन्हें 'राजद्रोह' के लिए छः वर्ष कैद की सजा दी। जेल से छूटने के बाद तिलक ने भारतीयों को युद्ध में ब्रिटेन को समर्थन देने के लिए कहा था। 1961 की लखनऊ कांग्रेस में उग्रवादियों ने कांग्रेस पर अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर लिया था तथा तिलक की महत्पूर्ण भूमिका थी और दोनों के संयुक्त शिष्टमण्डल में वे वायसराय से इस समझौते के अन्तर्गत योजना के सम्बन्ध में मिले भी थे। ऐनी बीसेन्ट के साथ तिलक ने 'होम–रूल' के प्रचार के लिए समसत देश में भ्रमण किया तथा उग्रवादियों के पक्ष में प्रबल जनमत बनाया। फलस्वरूप 1917 की कलकत्ता कांग्रेस में ऐसी बेसेन्ट अध्यक्ष निर्वाचित हुई। इससे यह सिद्ध हो गया कि तिलक, गाँधी तथा उदारवादियों का प्रभाव अत्यन्त कम हो गया है। लेकिन वे अभी तक कांग्रेस में बने थे।[11] अगस्त 1918 में मोन्टपफोर्ड सुधारों की अपर्याप्ता की आलोचना करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बम्बई में बुलाया गया था। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने इसके लिए सुझाव दिया था ताकि उग्रवादियों तथा उदारवादियों में पुनः सम्भव विभाजन को रोका जा सके। लेकिन उनके इस सुझाव का अस्वीकृत कर दिया गया। 1907 की सूरत कांग्रेस से इस अधिवेशन में स्थिति उदारवादियों के बिल्कुल प्रतिकूल हो गई थी। अतः उदारवादियों ने कांग्रेस छोड़ दी तथा 1 नवम्बर, 1918 को बैनर्जी की अध्यक्षता में पृथक् 'अखिल भारतीय उदारवादी सम्मेलन' हुआ।[12] मई 1919 में तिलक ने लन्दन में संयुक्त समिति के समक्ष अपने विचार रखे जिसमें उन्होंने प्रस्तावित मोन्टपफोर्ड सुधारों को अपना समर्थन दिया। वस्तुतः 1919 में तिलक ने अपने ही 1907 के इस कथन को सिद्ध कर दिया था कि 'आज के उग्रवादी कल के उदावादी होंगे, जैसे कि आज के उदारवादी बीते हुए कल के उग्रवादी थे। तिलक ने 20 अप्रैल, 1920 को 'कांग्रेस प्रजातान्त्रिक दल' जिसकी वह स्थापना करना चाहते थे, का घोषणापत्र प्रकाशित किया जिसका गाँधी ने अनुमोदन किया था। घोषणापत्र में कांग्रेस के प्रति निष्ठा तथा प्रजातन्त्र में विश्वास व्यक्त किया था। 22 मई को पूना की एक सार्वजनिक सभा में तिलक को 3 लाख रूपये की एक भेंट की गई। 1 जून के अन्तिम सप्ताप में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में उन्होंने भाग लिया था जिसमें गाँधी ने टर्की शान्ति सन्धि तथा पंजाब के दमनचक्रके विरूद्ध असहयोग का कार्यक्रम रखा था। तिलक ने सहयोग आन्दोलन के प्रति सन्देह व्यक्त किया था। उन्होंने कहा था, 'मैं कार्यक्रम को पर्याप्त पसन्द करता हूँ लेकिन मुझे सन्देह है कि देश असहयोग के अपेक्षित आत्म–त्याग में हमारे साथ होगा। मैं आन्दोलन की प्रगति में बाध डालने वाला कुछ कार्य नहीं करूँगा। मैं अपने सफलता की कामना करता हूँ, और यदि इसमें आपको लोकप्रियता प्राप्त हुई तो आप मुझमें एक उत्साही समर्थक पायेंगे। लेकिन कलकत्ता अधिवेशन से पूर्व ही 1 अगस्त, 1920 को उनका देहान्त हो गया।

सारांश

अंत में कहा जा सकता है कि तिलक राष्ट्रवादी आन्दोलन के सर्वाधिक महत्त्पूर्ण नेता थे और स्वराज्य उनके जीवन का उद्देश्य था। वे ब्रिटिश नौकरशाही के जन्मजात प्रबल शत्रु थे। वे किसी भी अवस्था में ब्रिटिश सरकार द्वारा किये गये अच्छे कार्य की भी प्रशंसा नहीं कर सकते थे क्योंकि इससे जन आन्दोलन के जोश के मन्द हो जाने की आशंका रहती थी। अतः सार्वजनिक रूप से वे जो कुछ भी कहते थे उसका गन्तव्य राजनैतिक होता था और यह आवश्यक नहीं कि वे व्यक्तिगत जीवन में भी वैसा ही विश्वास रखते हों। उदाहरणार्थ, वे मोन्टपफोर्ड सुधारों से सन्तुष्ट थे और उन्होंने संयुक्त प्रवर समिति में तथा भारत मंत्री मोन्टेस्क्यू से भी ऐसा था लेकिन सार्वजनिक रूप से वे ऐसा कहने के लिए तत्पर नहीं थे। इसी कारण 1919 की कांग्रेस में उनके और गाँधी के बीच मतभेद हुए थे। उस काल में कोई अन्य नेता न था जिसकी अत्यधिक प्रशंसा की जाती हो तथा उसका निषपूर्वक अनुसरण किया जाता हो अथवा उससे तीव्र घृणा की जाती हो। वे अपने जीवन–पर्यन्त एक आन्दोलनकारी रहे तथा प्रारम्भ से अन्त तक कई विवादों के केन्द्र रहे और कभी भी अपने आपको एक अच्छा सहयोगी सिद्ध नहीं कर पाये। लेकिन प्रत्येक परिस्थितियों में 'स्वराज्य' की पताका फहराते रहे।

सन्दर्भ सूची

1. एस. वॉलपर्ट, तिलक एण्ड गोखले, कैलिपफोर्निया यूनिवर्सिटी प्रैस, 1962.
2. ए.त्रिपाठी, दॉ एक्सप्रीमिस्ट चैलेन्ज, ओरियंट लॉन्गमैन, कलकत्ता, 1967.
3. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन , आगरा, 1975.
4. शिव कुमार गुप्ता, आधुनिक भारत का इतिहास, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1999.
5. योगेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय राजनीतिक विचारक, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2001.
6. अमरेश्वर अवस्थी एवं रामकुमार अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, 2002.
7. रामरत्न एवं रूचि त्यागी, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2003.
8. विपिनचन्द्र, भारत में राष्ट्रवाद एवं उपनिवेशवाद, ओरियंट लॉन्गमैन, नई दिल्ली, 2004
9. जी.पी.नेमा, भारतीय राजनीतिक विचारक, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2007.
10. शेखर बंधेपाध्याय, आधुनिक भारत का इतिहास–प्लासी से विभाजन तक, ओरियंट ब्लैक स्वॉन, नई दिल्ली, 2013.

[9] ए.त्रिपाठी, दॉ एक्सपिरीमिस्ट चैलेंज, पृ0 181.
[10] ए.त्रिपाठी, दॉ एक्सपिरीमिस्ट चैलेंज, पृ0 183.
[11] शिवकुमार गुप्ता, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 64.
[12] विपिनचन्द्र, भारत में राष्ट्रवाद एवं उपनिवेशवाद, पृ0 94.